INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 12 | JANUARY - 2023

बौद्ध धर्म–दर्शन के इतिहास का अध्ययन

पुनीत राजवंशी[1] , डॉ. श्रीमती पुष्पा दुबे[2]
[1]शोधार्थी इतिहास, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.).
[2]सहायक प्राध्यापक इतिहास, राजभानु सिंह स्मारक महाविद्यालय, मनिकवार, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

साधारणतः धर्म का अर्थ हिन्दू, इस्लाम, जोरेस्ट्रियन, बौद्ध, ईसाई आदि ऐतिहासिक धर्मों से समझा जाता है परन्तु धर्म–दर्शन इन धर्मों से भिन्न है, जितने भी ऐतिहासिक धर्म हैं, उनके कुछ–न–कुछ आधार होते हैं; उनकी मान्यताएँ होती हैं। धर्म दर्शन ऐतिहासिक धर्मों के व्यवहारों तथा आधारों का मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। धर्म–दर्शन उस दार्शनिक क्रिया का नाम है जो धर्म का बौद्धिक विवेचन करता है। धर्म का दार्शनिक विवेचन धर्म–दर्शन है।

मुख्य शब्द – बौद्ध धर्म, दर्शन एवं इतिहास ।

प्रस्तावना –

धर्म–दर्शन, विश्व के विभिन्न धर्मों के इतिहास, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन, मनोविज्ञान आदि विषयों से धर्म से सम्बन्धित भिन्न–भिन्न तथ्यों को एकत्र करता है। उक्त तथ्यों के संकलन मात्र से धर्म–दर्शन का आविर्भाव नहीं होता है। धर्म–दर्शन में, धर्म से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों के संकलन के द्वारा धर्मों का मूल्यांकन होता है। धार्मिक तथ्यों के विश्लेषण से सामान्य सिद्वान्तों की खोज करना धर्म–दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है।[1]

प्रो. ब्राइटमैन ने धर्म–दर्शन की परिभाषा इन शब्दों में दी हैं, धर्म–दर्शन धर्म की बौद्धिक व्याख्या की खोज का एक प्रयास है। यह धर्म का सम्बन्ध अन्य अनुभूतियों से बतलाकर धर्मिक विश्वासों की सत्यता, धार्मिक मनोवृत्तियों एवं आधारों का मूल्य स्पष्ट करता है। प्रो. राइट ने धर्म–दर्शन को इस प्रकार परिभाषित किया है, धर्म–दर्शन धर्म की सत्यता तथा धर्म के व्यवहारों एवं विश्वासों की मूल विशषताओं का सम्पूर्ण जगत् की दृष्टि से विवेचन करता है तथा धर्म का सम्बन्ध तत्व से निश्चित करता है।[2]

धर्म–दर्शन का मुख्य विषय ईश्वर–विचार है। धर्म दर्शन ईश्वर–विचार पर केन्द्रित है। धर्म दर्शन में ईश्वर–विचार के अतिरिक्त अन्य प्रश्नों पर विचार होता हैं। धर्म दर्शन में इन प्रश्नों पर विचार किया जाता है–ईश्वर क्या है? ईश्वर के अस्तित्व के क्या प्रमाण हैं? ईश्वर के क्या गुण हैं? ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है या व्यक्तित्वशून्य है? मनुष्य और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है? अशुभ का स्वरूप क्या है? अशुभ की समस्या का समाधान किस प्रकार सम्भव है? मनुष्य अमर है या मरणशील? अमरत्व के क्या प्रमाण हैं? धार्मिक चेतना के कौन–कौन तत्व हैं? क्या विभिन्न धर्मों के बीच एकता स्थापित की जा सकती है? धर्म की उत्पत्ति के कौन–कौन सिद्धान्त हैं? धार्मिक ज्ञान का स्वरूप क्या है? आदि सम्बन्धों में प्रश्नों के प्राप्त उत्तर व निष्कर्ष हैं। धर्म का स्वरूप, क्रिया और मूल्य, एक आदर्श धर्म की विशेषताएँ, मानवीय आत्मा की समस्या, ईश्वर के अस्तित्व के

प्रमाण, ईश्वर के गुण, अशुभ का स्वरूप, मूल्य की विशेषताएँ, धार्मिक चेतना के तत्व आदि धर्म–दर्शन के प्रमुख विषय हैं।[3]

विश्लेषण –

धर्म–दर्शन का इतिहास 1755 ई. में आरम्भ होता है जव ह्यूम की पुस्तक 'The Natural History of Religion' का प्रकाशन हुआ, जो सन् 1799 ई. में प्रकाशित हुई जो 'Dialogues Concerning Natural Religion' के नाम से विख्यात है। इन दोनों पुस्तकों में धार्मिक विश्वासों की आलोचनात्मक व्याख्या हुई है। प्रसिद्ध दार्शनिक कान्ट का योगदान धर्म–दर्शन में कम नहीं कहा जा सकता है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'Critique of Pure Reason' जिसका प्रकाशन 1781 ई. में हुआ, ईश्वर को सिद्ध करने के लिए दी गई परम्परागत युक्तियों का खण्डन करता है। परन्तु कान्ट की पुस्तक 'Critique of Practical Reason' जिसका प्रकाशन 1788 ई. में हुआ, ईश्वर को प्रमाणित करने के लिए नैतिक–तर्क की प्रस्थापना करता है। धर्म–दर्शन को लोकप्रिय बनाने का श्रेय हेगल के 'Lectures on the Philosophy of Religion' को है जो उनकी मृत्यु के पश्चात् सन् 1832 में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में हेगल ने धर्म–दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों का निरूपण किया है। धर्म–दर्शन के अनेक विद्वानों पर हेगल का प्रभाव दिखाई पड़ता है। ऐसे दार्शनिकों में एडवर्ड, जॉन केयर्ड, ऐ.यस. प्रींगल, पेटीसन, ब्राडले, वासांकेत इत्यादि मुख्य हैं।[4]

जर्मन दार्शनिक लॉटजे (Lotze) ने अपनी दो कृतियों से धर्म–दर्शन की अनमोल सेवा की है। वे दो कृतियाँ हैं 'Microcosmus' तथा 'Philosophy of Religion' जिनका प्रक्राशन क्रमशः 1858 ई. तथा 1882 ई. में माना जाता है। धर्म–दर्शन के अनेक विद्वानों ने जिनमें अमेरिका तथा ब्रिटेन के विद्वान आते हैं लॉटजे के प्रति आभार प्रकट किया है। बीसवीं शताब्दी मे अनेक विद्वानों ने धर्म–दर्शन में अमूल्य योगदान देकर धर्म–दर्शन के विकास में सहायता प्रदान की है।

धर्म–दर्शन की प्रगति में वीलियम जेम्स की पुस्तक 'The Varieties of Religious Experience' में धार्मिक अनुभूतियों का विवेचन हुआ है। रहस्यवाद तथा रहस्यात्मक अनुभूति, धर्म परिवर्तन, सिद्धजनत्व, प्रार्थना का स्वरूप आदि विषयों की विवेचना मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से की गई है। वीलियम जेम्स के अनुसार धर्म वातावरण के प्रति मानव का प्रतिक्रिया है। धर्म का उद्देश्य उन्होंने व्यावहारिक कहा है। धर्म का अर्थ ईश्वर में विश्वास है। अतः उन्होंने विश्वास को धर्म का मानसिक आधार बतलाया है।[5]

सन् 1912 ई. धर्म–दर्शन के इतिहास में मुख्य वर्ष कहा जा सकता है। उक्त साल हॉकिंग (W.E. Hocking) की पुस्तक 'The Meaning of God in Human Experience' तथा डुरखेयम (Durkheim) की पुस्तक 'The Elementary Forms of Religious Life' का प्रकाशन हुआ। इन पुस्तकों में धार्मिक विश्वासों एवं व्यवहारों की विवेचना सामाजिक दृष्टिकोण से की गई है। सन् 1917 में औटो की पुस्तक 'The Idea of the Holy' का प्रकाशन हुआ। सन् 1920 में एस. अलेकजेण्डर की प्रसिद्ध पुस्तक 'Space Time and Deity' का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक में ईश्वर एवं धर्म के सम्बन्ध में एक गत्यात्मक विचार को रखा गया है। ए.एन. व्हाइटहेड (A.N. Whitehead) ने अपनी पुस्तक 'Process and Reality' के द्वारा ईश्वर की व्याख्या समसामयिक विज्ञान एवं दर्शन के विकास की दृष्टि से करने का प्रयास किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन 1929 ई. में हुआ है।[6]

जॉन डिउवे (John Dewey) ने सन् 1964 में 'A Common Faith' नामक पुस्तक लिखकर धर्म के परम्परागत विचारों की समालोचना की है, जिसके फलस्वरूप अपने प्रकार के वादविवाद विकसित हुए हैं। इस प्रकार उनकी पुस्तक धर्म–दर्शन के योगदान में सहायक हुई। साम्यवादी एवं समाजवादी विचारकों ने धर्म के विरूद्ध आवाज उठाकर धर्म–दर्शन को बल प्रदान किया है। उनके आक्षेपों के फलस्वरूप ही धर्म–दर्शन का सहित्य समृद्ध हो पाया है।[7]

धर्म–दर्शन की दूसरी उपयोगिता यह है कि यह धर्मचारी को धर्म के विरूद्ध किये गये आक्षेपों का उत्तर देने योग्य बना देता है। धर्म का सम्बन्ध धार्मिक अनुभूतियों से है। धार्मिक अनुभूतियाँ अस्थिर एवं क्षणिक हैं। मनुष्य अपने धार्मिक अनुभूतियों को स्थायी रूप देने का प्रयास करता है जिसके लिये उसे प्रत्ययों की आवश्यकता होती है। ये प्रत्यय धर्म–दर्शन से लिये जाते हैं। अतः धर्म–दर्शन धार्मिक अनुभूतियों को स्थायी बनाने में सफल सिद्ध होता है। मनुष्य हर वस्तु का तार्किक एवं बौद्धिक विवेचन चाहता है। मनुष्य धर्म को तब तक मान्यता नहीं दे सकता जब तक इसका वैज्ञानिक एवं बौद्धिक पक्ष सबल न हो। धर्म–दर्शन धर्म को

वैज्ञानिक एवं बौद्धिक बनाने का प्रयास करता है, यह धर्म की व्याख्या दर्शन एवं विज्ञान के सन्दर्भ में करता है ताकि धर्म मानवीय बुद्धि को सन्तुष्ट कर सके।[8]

मनुष्य में बुद्धि सर्वोपरि है। उसका विवेक धर्म के उन्हीं तत्वों को मानने के लिये उसे बाध्य करता है जो उसके विवेक को सन्तुष्ट करते हों। धर्म–दर्शन धर्म के अन्ध विश्वासों तथा रूढ़ियों का निषेध करता है जिसके फलस्वरूप धर्म, अन्ध विश्वास एवं रूढ़िवादिता से दूर रहने का प्रयास करता है। अतः धर्म–दर्शन धर्म के बौद्धिक पक्ष को सबल बनाता है। कुछ धार्मिक व्यक्तियों ने धर्म–दर्शन की उपयोगिता का खण्डन किया है। उनकी आलोचनाओं के निराकरण के द्वारा धर्म–दर्शन की उपयोगिता परिलक्षित होता है। कुछ धार्मिक व्यक्तियों ने धर्म–दर्शन के प्रभाव को धर्म के लिए हानिकारक बतलाया है। धर्म आस्था का विषय है। धर्म–दर्शन धर्म के बौद्धिक एवं तार्किक विवेचन के द्वारा मानवीय धर्म सम्बन्धी आस्था को धक्का पहुँचाता है। धार्मिक व्यक्ति को भय है कि यदि धर्म–दर्शन धर्म का दार्शनिक विवेचन करता रहेगा तो धर्म के प्रति मानव की आस्था समाप्त हो जायेगी। कुछ विद्वानों ने धर्म–दर्शन की कल्पना को ही निराधार सिद्ध करने का प्रयास किया है। मानव समाज में कहीं भी सामान्य धर्म का अस्तित्व नहीं है। इसलिये सामान्य धर्म–दर्शन की कल्पना ही निराधार है। विश्व में हम अनेक धर्म पाते हैं। प्रत्येक धर्म एक दूसरे से पृथक् हैं तथा प्रत्येक का अपना व्यक्तिगत अस्तित्व है।[9]

धर्म मनोविज्ञान की भाँति एक जटिल मानसिक क्रिया है, क्योंकि मस्तिष्क का कोई एक अंग उसकी व्याख्या करने में असमर्थ है। धर्म के लिए तीन आवश्यक तत्वों का–बुद्धि, भावना और क्रिया–रहना नितान्त आवश्यक है। धर्म का सम्बन्ध मानव के आन्तरिक जीवन से है जिसमें हम उक्त तीन तत्वों का समावेश पाते हैं अर्थात् हम कह सकते हैं कि धर्म ईश्वर के प्रति व्यक्ति की सम्पूर्ण प्रक्रिया है। इसमें मानव ईश्वर के सम्बन्ध में अपनी बुद्धि और विवेक की सहायता से खोज करता है, उसे अनुभव करता है तथा अपनी अनुभूतियों को बाह्य क्रियाओं की सहायता से व्यक्त करता है। यदि कोई यह कहता है कि धर्म के लिए केवल बुद्धि या केवल भावना ही आवश्यक है तो इसका अर्थ यह है कि वह धर्म के किसी विशेष अंग को ही स्वीकार करता है। परन्तु ऐसा करना पूर्णतः अनुचित एवं असंगत कहा जाएगा, क्योंकि धर्म में तीन तत्वों को हम एक आवश्यक अंग के रूप में पाते हैं–एक का भी अभाव धर्म के लिए असम्भव है।

धर्म आंशिक रूप से बौद्धिक कहा जा सकता है। मानव निरन्तर ईश्वर की खोज करता रहा है। मानव आदि काल से लेकर अब तक ईश्वर सम्बन्ध में चिन्तन करता रहा है। वह ईश्वर को बुद्धि की सहायता से प्रमाणित करना चाहता है। मानव बौद्धिक प्राणी होने के कारण ईश्वर की खोज में निरन्तर निमग्न रहता है। वह उसे सिद्ध करने के लिए तर्क–वितर्क का सहारा लेता है। वह यह जानना चाहता है कि ईश्वर क्या है, पारमार्थिक सत्ता क्या है। इस प्रकार तर्क की सहायता से ईश्वर के सम्बन्ध में एक विचार बना लेता है। एक ओर ईश्वर को वह अनेक गुणों से विभूषित करता है और दूसरी ओर विश्व में अशुभ का ही राज्य पाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव आरम्भ काल से लेकर अब तक ईश्वर के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने में प्रयत्नशील है। धार्मिक व्यक्ति यह महसूस करता है कि ईश्वर हमारी सहायता कर सकता है। वह स्वयं जिस कार्य को कर सकने में समर्थ नहीं उस कार्य की पूर्ति ईश्वर की सहायता से सम्भव है। इस प्रकार मनुष्य ईश्वर के ऊपर निर्भरता का अनुभव करता है। मानव ईश्वर से प्रेम और श्रद्धा इसलिए रखता है। कि वह उसका विश्वासपात्र है। धार्मिक व्यक्ति चाहे कितना ही कष्ट का भागी क्यों न हो ईश्वर के प्रति सदा ही प्रेम और श्रद्धा रखता है। उसे यह पूर्ण विश्वास रहता है कि संसार का प्रत्येक कार्य ईश्वर के द्वारा ही संचालित है। चूंकि ईश्वर पूर्ण, असीम एवं दयालू है, इसलिए वह जो कुछ भी करता है उचित ही करता है। धार्मिक व्यक्ति ईश्वर से भय खाता है, वह अनुचित कार्य के लिए अनुत्साहित हो जाता है कि ईश्वर उसके अनुचित कार्य के बदले उसे सजा देगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म में भावना का भी एक मुख्य स्थान है। व्यक्ति अपनी बुद्धि की सहायता से ईश्वर के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करता है और उसे सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापी जानकर उसकी पूजा करता है। सामाजिक उत्सव धर्म के इस आवश्यक तत्व को प्रमाणित करता है। व्यक्ति अपनी अनुभूतियों के अनुकूल ईश्वर की आराधना एवं प्रार्थना करता है। मानव की सभी क्रियाएँ इस बात का प्रमाण देती हैं कि वह केवल ईश्वर के ज्ञान से ही संतोष नहीं प्राप्त कर लेता, बल्कि वह अपनी क्रियाओं का सहारा लेकर अपना प्रेम व्यक्त करता है।

धर्म के दो मुख्य अंग हैं – आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ। धर्म के लिए आवश्यक है कि दो तत्व हों–एक पूजा का विषय अर्थात् बाहरी तत्व और दूसरा उपासक अर्थात् वह जो बाहरी तत्व की उपासना करता हो।

आन्तरिक तत्व में हम विवेक, अनुभव, और बाह्य क्रियाओं का योग पाते हैं और बाह्य तत्व में हम एक अदृश्य सत्ता अर्थात् ईश्वर की कल्पना करते हैं जिसकी आराधना होती है। ईश्वर धर्म का केन्द्र बिन्दु है। ईश्वर के आभाव में धर्म का विकास सम्भव नहीं है। डॉ. फ्लिन्ट ने उच्च कोटि के धर्म को ईश्वरवाद का पर्याय बतलाया है। ईश्वर को उपास्य अर्थात् उपासना का विषय माना जाता है। ईश्वर को उपास्य होने के लिए अनेक विशेषताओं से युक्त एवं मानवीय गुणों से संयुक्त होना चाहिए। ईश्वर को अपने जीवों की रक्षा करनी चाहिए तथा अपने उपासकों के प्रति जागरूक होना चाहिए। ईश्वर में उपासकों की प्रार्थनाओं का उत्तर देने की क्षमता होनी चाहिए। ऐसा ईश्वर ही मानव को आकृष्ट कर सकता है। ईश्वर के अतिरिक्त धर्म के लिए उपासक का रहना अत्यन्त आवश्यक है।[10] मानव उपासक है जो ईश्वर की करूणा का पात्र हो सकता है। उपास्य और उपासक के भेद का रहना भी आवश्यक है, अन्यथा धार्मिक चेतना का विकास ही सम्भव नहीं है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः धर्म दर्शन अपने विषय की निष्पक्ष व्याख्या प्रस्तुत करता है। वह किसी विशेष धर्म का पक्षपात नहीं करता है। बल्कि धार्मिक अनुभूतियों का पक्षपातरहित अध्ययन प्रस्तुत करता है। बीसवीं शताब्दी में समकालीन दर्शन की तरह समकालीन धर्म–दर्शन का विकास हुआ है। समकालीन धर्म–दर्शन का केन्द्र बिन्दु धार्मिक भाषा–विश्लेषण कहा जा सकता है। धर्म दर्शन का लक्ष्य धार्मिक प्रत्ययों का विश्लेषण है। ईश्वर, पवित्रता, मुक्ति, उपासना, सृष्टि, बलिदान, शाश्वत जीवन आदि धार्मिक प्रत्यय हैं जिनका धर्म–दर्शन विश्लेषण करता है। धर्म के प्रत्ययों के विश्लेषण से धार्मिक भाषा का निर्वाण होता है। समकालीन दार्शनिकों में रसेल, ए. जे. एयर, राडल्फ कारनेप, विटजेन्स्टाइन, पाल तीलिक, जी. मैकग्रीनर, डब्लू.एफ. जूरडीग का नाम धार्मिक भाषा की ओर अत्यधिक जाता है। धर्म का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि धर्म के नाम पर निरन्तर संघर्ष होते रहे हैं। साधारणतः धर्मावलम्बी अपने धर्म को अनूठा समझता है तथा अन्य धर्मों की उपेक्षा करता है यानी दूसरे धर्म को न्यून स्थान देता है। धर्म–दर्शन विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय करने का प्रयास करता है ताकि संसार के सभी धार्मिक व्यक्तियों के बीच आत्मीयता एवं बन्धुत्व की भावना का सृजन हो। इस प्रकार धर्म–दर्शन विभिन्न धर्मों के बीच जो पार्थक्य की दीवार है, उसे नष्ट करने की दिशा में एक सफल कदम है।

संदर्भ –

1 डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 3
2 डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 3
3 डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 4
4 डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 5–6
[5] डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 6, 7
[6] डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 7, 8
[7] डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 8, 9
[8] डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 8
[9] डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 9
[10] डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – धर्म दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 14